निराकरण : क्या, क्यों, कैसे ?

-प्रो. वीरसागर जैन

दर्शनशास्त्र या न्यायशास्त्र पढ़ते समय हमारा सबसे ज्यादा परिचय जिस शब्द से होता है, वह है- निराकरण | वहाँ कदम-कदम पर इस शब्द का बहुत अधिक प्रयोग होता है | वहाँ यदि एक वाक्य भी कुछ कहा जाता है तो उसके भी एक-एक पद से एक-एक मत का निराकरण किया जाता है | विद्यार्थियों के तो कान ही पक जाते हैं इस शब्द को सुनते-सुनते | कभी-कभी तो उन्हें बड़ी झुंझलाहट-सी भी पैदा हो जाती है | ऐसा लगता है कि क्या सारे दार्शनिकों को एक ही काम है- अन्यमतनिराकरण, अन्यमतनिराकरण, बस, और कोई काम ही नहीं है ? उन सबके जीवन का क्या एक ही उद्देश्य है- अन्यमतनिराकरण, दूसरों के मत का खंडन करना, बस, अन्य कुछ है ही नहीं ? आखिर हमें दूसरों का निराकरण करना ही क्यों है ? क्या दूसरों का निराकरण करना अनिवार्य है ? क्या हम सिर्फ अपनी बात नहीं कह सकते ? अरे भाई, दूसरों के निराकरण से उनको कितनी पीड़ा होती होगी -यह भी तो सोचो, कोई तुम्हारा निराकरण करे तो तुम्हें कितना बुरा लगेगा | निराकरण से कषाय भी तो उत्पन्न होती है | इतिहास उठाकर देखो, दूसरों के मत का निराकरण करने से कितना कलह पृथ्वी पर हुआ है, खून की नदियाँ बह गई हैं | अत: उचित तो यही लगता है कि हम केवल अपनी बात कहें, दूसरों का निराकरण न करें, इसी से समाज में शान्ति बनी रहती है, इत्यादि |

किन्तु भाई ! यह बात इतनी स्थूल नहीं है, इसे ठीक से समझने के लिए हमें इसकी गहराई में जाना होगा, इसका पूरा शास्त्र है उसे समझना होगा, जानना होगा कि आखिर निराकरण किसे कहते हैं, वह क्यों किया जाता है, उसके कितने भेद-प्रभेद हैं, उनका क्या प्रयोजन है, उसकी क्या समीचीन विधि है, इत्यादि |

निराकरण शब्द का अर्थ एवं उसके पर्यायवाची

निराकरण शब्द का कोशग्रन्थों के अनुसार हिन्दी-अर्थ होता है- अलग करना, दूर करना, हटाना, मिटाना, छांटना, रद्द करना आदि | इसके अनेक पर्यायवाची हैं- निरास, निरसन, निराकृति, खंडन, उच्छेद, व्युच्छेद, व्यवच्छेद, उपप्लव, निवृत्ति, निवारण, निराकरण, व्यतिरेक, परिहार आदि | अंग्रेजी भाषा में इसे refutation, dismissal, neutralization, disposal आदि कहते हैं |

निराकरण के भेद या प्रकार

निराकरण के मूलतः तीन प्रकार होते हैं- अयोगव्यवच्छेद, अन्ययोगव्यवच्छेद, अत्यन्तायोगव्यवच्छेद | 'सप्तभंगीतरंगिणी' में इन तीनों को एवकार पर घटित करके इस प्रकार समझाया है कि जब वह विशेषण के साथ अन्वित (युक्त) हो तो उसे अयोगव्यवच्छेदक कहते हैं, जब वह विशेष्य के साथ अन्वित (युक्त) हो तो उसे अन्ययोगव्यवच्छेदक कहते हैं और जब वह क्रिया के साथ अन्वित (युक्त) हो तो उसे अत्यन्तायोगव्यवच्छेदक कहते हैं | उदाहरणार्थ- 'शंख: पांडुर: एव' -इस वाक्य में आया हुआ एवकार अयोगव्यवच्छेदक है, 'पार्थ: एव धनुर्धर:' -इस वाक्य में आया हुआ एवकार अन्ययोगव्यवच्छेदक है, और 'नीलं सरोजं भवति एव' -इस वाक्य में आया हुआ एवकार अत्यन्तायोगव्यवच्छेदक है |

लगता है बात कुछ कठिन हो गई है, अत: मैं इसे कुछ सरल भाषा में कहने की कोशिश करता हूँ | निराकरण वस्तुतः तीन ही प्रकार का होता है, चौथा प्रकार उसका कोई नहीं होता, क्योंकि किसी भी कथन के मिथ्या होने की सम्भावना तीन ही प्रकार से होती है- या तो उसका विशेषण मिथ्या होता है या विशेष्य मिथ्या होता है या फिर क्रिया मिथ्या होती है, बस, अन्य कोई चौथी स्थिति नहीं बनती है |

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात इससे यह भी सिद्ध होती है कि वास्तव में निराकरण भी उसी का हो सकता है जो कथंचित् सत् हो, सर्वथा असत् का तो निराकरण भी नहीं हो सकता, जैसा कि आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने भी अनेक बार स्पष्ट कहा है | यथा-

1. **संज्ञिन: प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् |** -आप्तमीमांसा, 27
   (प्रतिषेध्य के बिना प्रतिषेध नहीं होता |)
2. **द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधः संज्ञिनः सतः ।**
   असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः ।। -आप्तमीमांसा, 47
   (विद्यमान संज्ञी का परद्रव्यादि भाव से निषेध हुआ करता है | सर्वथा असत् वस्तु का विधि-निषेध कुछ नहीं होता |)

निराकरण भी उसी का हो सकता है जो कथंचित् सत् हो, सर्वथा असत् का तो निराकरण भी नहीं हो सकता -यह बात प्रथमदृष्ट्या बड़ी अटपटी लगती है, पर एकदम युक्तिसंगत है कि जो है उसी का तो निराकरण किया जा सकेगा, जो बिलकुल ही नहीं है, उसका कैसे क्या कोई निराकरण करेगा ?

निराकरण क्यों किया जाता है

अब विचारणीय है कि आखिर निराकरण क्यों किया जाता है, क्या वह आवश्यक होता है, अनिवार्य होता है, उसके बिना कार्य सिद्ध नहीं होता |

दरअसल, स्वमतमण्डन के लिए परमतखण्डन करना भी अत्यन्त आवश्यक होता है, अन्यथा स्वमत-मण्डन भी भलीभांति नहीं हो सकता | ऐसा ही वस्तुस्वरूप है | अपनी बात को स्थापित करने के लिए दूसरे की बात का, जो कि हमारी बात से विरुद्ध है, निराकरण करना भी आवश्यक ही है | यदि हम दूसरे की बात का निराकरण नहीं करेंगे तो हमारी अपनी बात भी ठीक से सिद्ध नहीं होगी, दुर्बल रह जाएगी, संदिग्ध रह जाएगी, क्योंकि दूसरे की बात आपकी बात से भिन्न है और आपने उसका निराकरण तो किया ही नहीं है | अत: अपनी बात कहने के साथ यह स्पष्टीकरण करना भी आपका ही दायित्व है कि उससे भिन्न बात क्यों गलत है | आचार्य विद्यानन्द स्वामी ने भी 'आप्तपरीक्षा' में सिद्ध किया है कि अन्य आप्तों का व्यवच्छेद किये बिना, उनको आप्ताभास सिद्ध किये बिना अरिहन्त में भी आप्तत्व की प्रतिष्ठा ठीक से नहीं हो सकती | यथा-

अन्ययोगव्यवच्छेदान्निश्चिते हि महात्मनि |
तस्योपदेशसामर्थ्यादनुष्ठानं प्रतिष्ठितम् || -आप्तपरीक्षा, 5

दरअसल, विधि और निषेध दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों अविनाभावी ही हैं, एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता | यह बात अलग है कि विधिवाक्य में विधेय मुख्य होता है और निषेधवाक्य में निषेध्य मुख्य होता है, परन्तु गौण रूप पर भी ध्यान दिया जाए तो प्रत्येक वाक्य में विधेय और निषेध्य दोनों होते ही हैं | कभी भी कोई भी वाक्य एक ही रूप को नहीं कहता |

इसप्रकार यद्यपि मण्डन में ही खण्डन हो जाता है, प्रतिपादन में ही निराकरण हो जाता है, तथापि स्पष्ट बोध कराने के लिए मण्डन के साथ-साथ खण्डन भी अथवा प्रतिपादन के साथ-साथ निराकरण भी दर्शनशास्त्र में आवश्यक समझा गया है, अनिवार्य समझा गया है |

क्या निराकरण से कषाय नहीं बढ़ती ?

अब यहाँ एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या परमतखंडन से परमतवालों को दुःख नहीं होता होगा, क्रोध नहीं आता होगा ? और क्या इससे हमको भी पाप नहीं लगता होगा ?

उत्तर- सच्चे दार्शनिकों/नैयायिकों की दुनिया निराली होती है | उनकी सोच हमारे जैसी हल्की नहीं होती | उनमें परस्पर एक-दूसरे से बहुत प्रेम होता है, क्योंकि वे सब एक ही पथ के पथिक होते हैं और इस तरह खंडन-मंडन की प्रक्रिया अपनाकर वे एक-दूसरे का सहयोग करते हैं, उपकार करते हैं | वहाँ खंडन करनेवाला व्यक्ति भी द्वेष या दुर्भावना से खंडन नहीं करता है, अपितु उसके स्खलन की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए ही करता है | वहाँ किसी को किसी की मूलभूत अन्तरंग नियत पर कोई संदेह नहीं होता है | बस इतना ही रहता है कि उससे प्रमाद या अज्ञानवश स्खलन हो रहा है और मुझे उसी का निराकरण करना है | यही कारण है कि वहाँ किसी को भी किसी का खंडन सुनकर किंचित् भी दुःख नहीं होता, अपितु बहुत प्रसन्नता होती है, क्योंकि इससे उन्हें सत्य के अनुसन्धान में बड़ी सहायता मिलती है, उनका स्खलन दूर होता है, चिन्तन विकसित होता है, निर्मल होता है | यह बात अलग है कि कुछ लोग अच्छे दार्शनिक नहीं होते और दुर्भावना से ही परमतखंडन करते हैं, अत: उन्हें तो उससे अवश्य पाप लगता ही है | परमतखंडन ही क्या, उनका तो स्वमतमण्डन भी कषाय का ही कारण होता है | किन्तु सच्चे दार्शनिक ऐसी हल्की सोच वाले कभी नहीं होते, उनका खण्डन-मण्डन सभी सत्य की आराधना के लिए होता है | कहा भी है कि अज्ञानी की विद्या विवाद के लिए होती है और ज्ञानी की विद्या तत्त्वज्ञान के लिए | यथा-

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्ति: परेषां परिपीडनाय |
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ||

अर्थ- दुर्जन व्यक्ति की विद्या विवाद के लिए, धन अभिमान के लिए और शक्ति दूसरों को पीड़ित करने के लिए होती है; किन्तु सज्जन व्यक्ति के ये सब विपरीत होते हैं, उसकी विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूसरों की रक्षा के लिए होती है |

इस प्रकार यह भलीभांति स्पष्ट होता है कि सत्य की प्राप्ति में निराकरण या खण्डनविधि का भी बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, वह बात कैसे भी बुरी या कषायवर्धक बात नहीं होती है | उसे बुरी या कषायवर्धक बात समझना हमारे कुछ मित्रों की अज्ञानता ही है | निराकरण तो तत्त्वज्ञान का साधन है, समीचीन उपाय है |

निराकरण कैसे किया जाता है

अब विचारणीय है कि निराकरण किसका किया जाता है, कैसे किया जाता है | ऊपर कहा जा चुका है कि वास्तव में निराकरण भी उसी का हो सकता है जो कथंचित् सत् हो, सर्वथा असत् का तो निराकरण भी नहीं हो सकता | बात अटपटी लगती है, पर एकदम युक्तिसंगत है कि जो है उसी का तो निराकरण किया जा सकेगा, जो बिलकुल ही नहीं होता उसका कैसे क्या कोई निराकरण करेगा ? मण्डन और खण्डन दोनों ही वास्तव में सत् के ही होते हैं, असत् के नहीं | यद्यपि कहा तो यही जाता है कि निराकरण असत् (असत्य) का होता है, पर वास्तव में वह भी सर्वथा असत् नहीं होता है, कथंचित् सत् ही होता है |

निराकरण की इस व्यवस्था को भलीभांति स्पष्ट करने के लिए जैनाचार्यों ने तीन प्रकार के एवकार का विधान बनाया है, जो बहुत सूक्ष्म सिद्धान्त है, परन्तु यहाँ हम उसे उदाहरण के साथ सरलता से समझने का प्रयास करते हैं-

1. **अयोगव्यवच्छेदक एवकार-** जो एवकार विशेषण के साथ अन्वित होता है उसे अयोगव्यवच्छेदक एवकार कहते हैं | इसका उदाहरण है- ‘शंख: पांडुर: एव’ अर्थात् शंख पीला ही है | यहाँ शंख को पीला ही बताकर उसके अन्य कृष्ण, रक्त, श्वेत आदि अन्य विशेषणों का निराकरण किया गया है, अत: यह अयोगव्यवच्छेदक एवकार है |
2. **अन्ययोगव्यवच्छेदक एवकार-** जो एवकार विशेष्य के साथ अन्वित होता है उसे अन्ययोगव्यवच्छेदक एवकार कहते हैं | इसका उदाहरण है- ‘पार्थ: एव धनुर्धर:’ अर्थात् पार्थ (अर्जुन) ही धनुर्धर है | यहाँ पार्थ को ही धनुर्धर बताकर उसके अतिरिक्त अन्य भीम, नकुल आदि अन्य विशेष्यों का निराकरण किया गया है, अत: यह अन्ययोगव्यवच्छेदक एवकार है |
3. **अत्यन्तायोगव्यवच्छेदक एवकार-** जो एवकार क्रिया के साथ अन्वित होता है उसे अत्यन्तायोग व्यवच्छेदक एवकार कहते हैं | इसका उदाहरण है- ‘नीलं सरोजं भवति एव’ अर्थात् नीला कमल है ही | यहाँ नीले कमल को है ही बताकर उसके नहीं होने रूप क्रिया का निराकरण किया गया है, अत: यह अत्यन्तायोगयोगव्यवच्छेदक एवकार है |

कहने का तात्पर्य यह हुआ कि समीचीन निराकरण भी वस्तुतः सर्वथा असत् का नहीं होता, कथंचित् असत् का ही होता है | जिसप्रकार प्रतिपाद्य कथंचित् सत् और कथंचित् असत् होता है, उसीप्रकार निषेध्य भी कथंचित् सत् और कथंचित् असत् होता है |

प्रश्न है कि फिर निराकरण किसका किया जाता है ?

निराकरण केवल उनके मिथ्या योगभाव का होता है, जो कि अज्ञानी जीव कहते या जानते हैं | जैसे कि गधे के सींग -इस कथन में गधा भी सत् है और सींग भी सत् हैं, मात्र इन दोनों का योग मिथ्या है | निराकरण इसी मिथ्या योग का होता है | इसी प्रकार वन्ध्या का पुत्र -इस कथन में वन्ध्या भी सत् है और पुत्र भी सत् हैं, मात्र इन दोनों का योग मिथ्या है | निराकरण केवल इस मिथ्या योग का ही होता है |